तिथि–10 अक्टूबर 2020
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२१
युगाब्द-५१२१, अंक-१३१, वर्ष-१३
अधिकाश्विन विक्रमी २०७७ (अक्टूबर 2020)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्...

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा। पुरः सदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी॥ –ऋ० १। ५। १९। ३

व्याख्यान–हे प्रियबन्धु विद्वानो! (देवो न) ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य की नाईं प्रकाश कर रहा है। (यः पृथिवीम्) जो पृथिव्यादि जगत् को रचके धारण कर रहा है। और (विश्वधाया उपक्षेति) विश्वधारकशक्ति का भी निवास देने और धारण करनेवाला है। तथा जो सब जगत् का परम मित्र अर्थात् जैसे (हितमित्रो न राजा) प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है, वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है, अन्य कोई भी नहीं। (पुर:सदः शर्मसदो न वीराः) जो जन ईश्वर के 'पुर:सदः' हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही 'शर्मसदः' अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं। जैसे (न वीराः) पुत्रलोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं, वे सदा सुख ही रहते हैं। परन्तु जो अनन्यचित्त होके निराकार, सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं, जैसे कि (अनवद्या पतिजुष्टेव नारी) अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त, पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात-दिन तन-मन-धन से अत्यन्त प्रीतियुक्त होके [पति के] अनुकूल ही रहती है, वैसे प्रेमप्रीतियुक्त होके आओ भाई लोगो! ईश्वर की भक्ति करें। और अपने सब मिलके परमात्मा से परमसुखलाभ उठावें ।।

सम्पादकीय

संगठन का मूल आधार–'विद्या'

संसारभर में कोई भी संगठन हो, चाहे वह किसी भी प्रकार का संगठन हो- आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक, सभी के मूल में कोई एक विचार होता है, सिद्धान्त होता है। जिस विचार पर केन्द्रित करते हुए कोई स्वप्नदृष्टा संगठन अर्थात् तदनुकूल विचारशील व्यक्तियों का एकीकरण करता है। जिस मूल विचार के चारों ओर यह व्यक्ति समूह अर्थात् संगठन बनता है, वह विचार यदि सत्य पर आधारित सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वदेशिक होते हुए इहलोक के साथ-साथ पारलौकिक सुख देने वाला हो, (यहाँ पारलौलिक सुख से तात्पर्य मुक्ति से लिया जाना चाहिए) तभी उसे विद्या कहते हैं- **'सा विद्या या विमुक्तये .....।**

जन्म-मरण से मुक्ति तो सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है, किन्तु उससे पहले बहुत सारी मुक्ति आवश्यक हैं- अज्ञान से मुक्ति, अन्धविश्वास से मुक्ति, छल से, कपट से, मिथ्याचार से, झूठे व्यापार से, झूठे व्यवहार से, झूठे अंहकार से, झूठे काल्पनिक सपनों से, राग से, द्वेष से, ईर्ष्या से, काम से, क्रोध से, पुरुषार्थहीन होकर धन की लालसा से आदि-आदि।

सनातन काल से सनातन समाज अर्थात् आर्य समाज इसी विद्या की उन्नतिशील सरणि पर करोड़ों वर्षों तक एकाकार रहा है, संगठित रहा है जिसके फलस्वरूप सृष्टि के आदि काल से महाभारतकाल पर्यन्त हमारे पूर्वज अजेय-अपराजेय और शक्तिशाली रहे हैं। जब न रह पाये तब जो दुर्दशा एवं दुर्दिन पड़े, वह सब हम जानते ही हैं। ऋषिवर दयानन्द जी ने बहुत काल के उपरान्त इसी सनातन आर्ष विद्या का गहन अन्वेषण कर जो मिथ्या मायाजाल चहुंओर अति विस्तार को प्राप्त कर चुका था; उस अज्ञान, अन्धविश्वासमूलक मिथ्या मायाजाल को तर्क कुठार से छिन्न-भिन्न कर पुनः 'विद्या' को प्रतिस्थापित करने का महानतम् पुरुषार्थ किया। जिसके परिणामस्वरूप **'आर्ष विद्या'** अपना स्थान प्राप्त करने लगी। पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पं. युधिष्ठर मीमांसक एवं पं. विजयपाल 'विद्यावारिधि' से प्रवाहित वह अनुस्यूत अविच्छिन्न परम्परा पं. परमदेव मीमांसक जी से हमें प्राप्त हुई है और अभी हो रही है, कर्नाटक राज्यस्थ गोकर्ण के **'वेदभवन संस्कृत महाविद्यालय'** से अध्ययन के उपरान्त मैं स्वयं स्वप्निल भविष्य के योजनामयी चित्र बनाता-मिटाता और फिर बनाता हुआ उत्तर के लिए प्रस्थान करने ही वाला था कि- वेदों के प्रातिशाख्यों के अध्ययन-अन्वेषण के लिए आचार्य परमदेव जी का आगमन गोकर्ण में उसी प्रतिष्ठित ऋग्वेदाध्यायी के घर में हुआ जिसमें हम सान्निध्य प्राप्त किए हुए थे। लगभग दो मास में अधीत विद्या का ज्वर व्यपगत होकर मैं उनकी विद्या की गहनता को मात्र अनुभव कर पाया था। ई. सन् 1996 से **'आचार्य-शिष्य संवाद'** जो प्रारम्भ हुआ वह आज

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... भी निरन्तर जारी है। पूज्य आचार्य जी से व्याकरण, निरुक्त, गृह्यसूत्र, योगदर्शन, मीमांसा एवं उपनिषद् सहित प्रातिशाख्यादि का अध्ययन किया।

समय आगे बढ़ा और 2003 के अन्तिममास से ही 'आर्य महासंघ' के अंग-प्रत्यंग निर्मित होने लगे- आर्य निर्मात्री सभा, आर्य क्षत्रिय सभा, आर्य संरक्षिणी सभा, आर्य छात्र सभा, आर्य राज सभा, आर्य गुरुकुल महाविद्यालय एवं आर्या गुरुकुल महाविद्यालय सहित लगभग दो सौ आर्य समाजों का सुव्यवस्थित तन्त्र। सभी आर्य/ आर्याओं को यह नि:शंसय बोध होना चाहिए कि- हमारे इस सम्पूर्ण संगठन का आधारभूत तत्त्व है- 'विद्या'। इस विद्या की गहराई में गम्भीरता के साथ जितना-जितना व्यक्ति उतारता जाता है, श्रद्धापूर्वक विनम्रता के साथ ग्रहण करता हुआ, स्वयं के जीवन का, परिवार, समाज, राष्ट्र, अध्यात्म, धर्म, आत्मा और परमपिता परमात्मा की ओर जितना-जितना बढ़ता जाता है, उतना-उतना व्यक्ति कृतज्ञता का अनुभव करता हुआ उन्नतिशील होता और संगठननिष्ठ होता जाता है। वह अपने संगठन, अपने आर्यजनों एवं आचार्यजनों के किए हुए उपकारों को स्मरण करता अभिभूत होता हुआ, **धन्योऽस्मि-धन्योऽस्मि** की अनुभूति में रहता है। किन्तु इतने बड़े संसार में सभी धैर्यशाली, स्थिरचित्त होकर विद्या की गहराई में उतर ही जायें आवश्यक नहीं। अत: ऐसे भी लोग होते हैं जो थोड़ी सी विद्या, थोड़ा सा परिश्रम, थोड़ा सा पद, थोड़ी सी प्रतिष्ठा पाकर बड़े-बड़े स्वार्थसाधना के दिवास्वप्न देखने लगते हैं, अपने अनुकूल कुछ थोड़े से लोगों को छलपूर्वक झूठ-सच मिलाकर सत्य के संघर्ष की दुहाई देकर, सिद्धान्तों की रक्षा का नया मनमोहक पाठ पढ़ाकर, विद्यायुक्त सहस्रों विधि-व्यवस्थाओं में से किसी एक विधि-व्यवस्था का चमत्कारपूर्वक मनमोहक काल्पनिक चित्रण करके आचार्य परम्परा से ही द्रोह कर बैठते हैं।

आचार्य परम्परा से द्रोह अर्थात् विद्या (सिद्धान्तों) से ही द्रोह अर्थात् विमुखता उत्पन्न होती जाती है। ऐसा मनुष्य संशय सागर में गोते खाते हुए स्वयं के जीवन के साथ-साथ कुछ अन्य लोगों के जीवन को उन्नति पथ पर बढ़ने से रोकने के पाप का भागी हो जाता है और दीर्घकाल तक अपने द्वारा दिग्भ्रमित किए गये लोगों का सुव्यवस्थित मार्गदर्शन नहीं कर पाता है। शनै: शनै: लोग अल्प परिणामकारी उद्देश्य के ही भंवरजाल में फंसकर जीवनावधि पूरी कर इहलोक से प्रस्थान तो कर ही जाते हैं।

हम सभी आर्य/आर्याओं को संगठन के उद्देश्य को कभी भी विस्मृत नहीं करना चाहिए। उद्देश्य- आर्य एवं आर्यावर्त है। इसके लिए आवश्यक है सौ करोड़ हमारे ही अपने बन्धु-बान्धवों का आर्यीकरण। इस विशाल जनसंख्या के अन्त:करण में इस अत्यन्त तप-त्याग से उपार्जित होने वाले लक्ष्य को प्रतिष्ठित करने के लिए इस 'संगठन यज्ञ' का ब्रह्मा अर्थात् मार्गदर्शक भी उतनी ही विस्तृत दूर दृष्टि से सम्पन्न तप:पूत, त्यागशील, मान-अपमान और सफलता-असफलता को सहते हुए भी निरन्तर आगे बढ़ने एवं बढ़ाने वाला वेदवेत्ता विद्वान चाहिए होता है, और हम सब परमसौभाग्यशाली हैं कि- हमारे मार्गदर्शक पथ प्रदर्शक वर्तमान काल के उपस्थित विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान हैं, जो सांगोपांगवेद विद्या सम्पन्न अद्वितीय समाज हितैषी एवं राष्ट्रचिन्तक हैं। हमें अपने संगठन 'आर्य महासंघ' एवं संगठन के मार्गदर्शक आचार्य जी पर गौरव की अनुभूति निरन्तर बनी रहनी चाहिए। साथ ही हमें यह आर्ष सिद्धान्त कभी भूलना नहीं चाहिए कि-

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तम:।
स विज्ञेय: परो धर्मो नाज्ञानामुदितो ऽयुतै: ॥ मनु.

यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम संन्यासी त्यागशील जिस धर्म (सिद्धान्त) की व्यवस्था करे, वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि- अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों, करोड़ों मिल के जो व्यवस्था करें, उसको कभी न मानना चाहिए।

वर्तमान में यह सिद्धान्त स्मरण करवाना इसलिए भी आवश्यक प्रतीत हुआ है कि कुछ दिग्भ्रमित लोग उच्च लक्ष्य के लिए स्थापित हमारे इस पवित्रतम संगठन के विषय में भांति-भांति की अफवाह फैलाकर अपनी काल्पनिक मायावी दुनिया बनाने के दिवा:स्वप्न देख रहे हैं और कुछ संगठननिष्ठ आर्य एवं आर्याओं को भ्रमित करने का भी प्रयास कर रहे हैं।

आर्य/आर्याओं! सम्पूर्ण मानवीय समाज में जैसे परिवार में सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जय-पराजय एवं सफलता-असफलता आती और जाती रहती है, उसी प्रकार संगठन में यह सब समय-समय पर होता है। हम सभी को कोरोना महामारी के उपरान्त एक नवीन उत्साह के साथ अपने 'आर्य एवं आर्यावर्त्त' के लक्ष्य के लिए कटिबद्ध होकर जुट जाना होगा, जो हानि इस महामारी के परिणामस्वरूप पिछले छ: मास में आर्य निर्माण एवं आर्य संरक्षण में उठानी पड़ी है उस हानि की पूर्त्ति हम सभी को मिलकर दृढ़ता से विद्या की प्रगाढ़तापूर्वक करनी है।

2 अक्टू - 31 अक्टू 2020 आश्विन (अधिमास) ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
विजय दिवस आश्विन शुक्ल दशमी 25 अक्टूबर				रेवती कृष्ण प्रतिपदा 2 अक्टूबर	रेवती कृष्ण द्वितीया 3 अक्टूबर	अश्विनी कृष्ण द्वितीया 4 अक्टूबर
भरणी कृष्ण तृतीया 5 अक्टूबर	कृत्तिका कृष्ण चतुर्थी 6 अक्टूबर	रोहिणी कृष्ण पंचमी 7 अक्टूबर	मृगशिरा कृष्ण षष्ठी 8 अक्टूबर	आर्द्रा कृष्ण सप्तमी 9 अक्टूबर	पुनर्वसु कृष्ण अष्टमी 10 अक्टूबर	पुष्य कृष्ण नवमी 11 अक्टूबर
आश्लेषा कृष्ण दशमी 12 अक्टूबर	मघा कृष्ण एकादशी 13 अक्टूबर	पू॰ फाल्गुनी कृष्ण द्वादशी 14 अक्टूबर	उ॰ फाल्गुनी कृष्ण त्रयोदशी/ चतुर्दशी 15 अक्टूबर	हस्त कृष्ण अमावस्या 16 अक्टूबर	चित्रा शुक्ल प्रतिपदा 17 अक्टूबर	स्वाति/विशाखा शुक्ल द्वितीया 18 अक्टूबर
अनुराधा शुक्ल तृतीया 19 अक्टूबर	ज्येष्ठा शुक्ल चतुर्थी 20 अक्टूबर	मूल शुक्ल पंचमी 21 अक्टूबर	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल षष्ठी 22 अक्टूबर	उत्तराषाढ़ा शुक्ल सप्तमी 23 अक्टूबर	श्रवण शुक्ल अष्टमी 24 अक्टूबर	धनिष्ठा शुक्ल नवमी 25 अक्टूबर
शतभिषा शुक्ल दशमी 26 अक्टूबर	शतभिषा शुक्ल एकादशी 27 अक्टूबर	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल द्वादशी 28 अक्टूबर	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल त्रयोदशी 29 अक्टूबर	रेवती शुक्ल चतुर्दशी 30 अक्टूबर	अश्विनी शुक्ल पूर्णिमा 31 अक्टूबर	

1 नवम्बर - 30 नवम्बर 2020 कार्तिक ऋतु- हेमन्त

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
रोहिणी शुक्ल पूर्णिमा 30 नवम्बर	दीपावली पर्व व ऋषि बलिदान दिवस 15 नवम्बर					भरणी कृष्ण प्रतिपदा 1 नवम्बर
कृत्तिका कृष्ण द्वितीया 2 नवम्बर	रोहिणी कृष्ण तृतीया 3 नवम्बर	मृगशिरा कृष्ण चतुर्थी 4 नवम्बर	आर्द्रा कृष्ण पंचमी 5 नवम्बर	आर्द्रा कृष्ण षष्ठी 6 नवम्बर	पुनर्वसु कृष्ण षष्ठी 7 नवम्बर	पुष्य कृष्ण सप्तमी 8 नवम्बर
आश्लेषा कृष्ण अष्टमी/ नवमी 9 नवम्बर	मघा/पू॰ फाल्गुनी कृष्ण दशमी 10 नवम्बर	उ॰ फाल्गुनी कृष्ण एकादशी 11 नवम्बर	हस्त कृष्ण द्वादशी 12 नवम्बर	चित्रा कृष्ण त्रयोदशी 13 नवम्बर	स्वाति कृष्ण चतुर्दशी 14 नवम्बर	विशाखा कृष्ण अमावस्या 15 नवम्बर
अनुराधा शुक्ल प्रतिपदा /द्वितीया 16 नवम्बर	ज्येष्ठा शुक्ल तृतीया 17 नवम्बर	मूल शुक्ल चतुर्थी 18 नवम्बर	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल पंचमी 19 नवम्बर	उत्तराषाढ़ा शुक्ल षष्ठी 20 नवम्बर	श्रवण शुक्ल सप्तमी 21 नवम्बर	धनिष्ठा शुक्ल अष्टमी 22 नवम्बर
शतभिषा शुक्ल नवमी 23 नवम्बर	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल दशमी 24 नवम्बर	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल एकादशी 25 नवम्बर	रेवती शुक्ल द्वादशी 26 नवम्बर	अश्विनी शुक्ल द्वादशी 27 नवम्बर	भरणी शुक्ल त्रयोदशी 28 नवम्बर	कृत्तिका शुक्ल चतुर्दशी 29 नवम्बर

वर्ण व्यवस्थाः डॉ. अम्बेडकर बनाम वैदिक मत-४

-सोनू आर्य, हरसौला

तृतीयः- डॉ. आम्बेडकर की एक आपत्ति मनु की दण्ड व्यवस्था को लेकर है। दण्ड व्यवस्था विषयक जिस श्लोक का वर्णन प्रारम्भ में हमने किया है, डॉ. आम्बेडकर ने उससे उल्ट श्लोक पढ़ा, जिसमें ब्राह्मण को लेशमात्र दण्ड व शूद्र को सूक्ष्म अपराध पर भी बहुत कठोर दण्ड देने का प्रावधान है। इससे डॉ. आम्बेडकर यह आपत्ति करते है कि मनुस्मृति में ब्राह्मणों को विशेष रियायत प्रदान की गई है।

चतुर्थः- डॉ. आम्बेडकर की एक अन्य आपत्ति उनकी 'हिन्दुत्व का दर्शन' में यह है कि न्याय (स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व) की कसौटी पर हिन्दू धर्म उपयुक्त सिद्ध नहीं होता। स्वतन्त्रता को वास्तविक बनाने के लिए उसके साथ कुछ सामाजिक शर्ते भी जुड़ी होनी चाहिएं।

1. प्रथम- सामाजिक समानता का होना आवश्यक है।

2. द्वितीय- आर्थिक सुरक्षा होनी चाहिए।

3. तृतिया- ज्ञान सब लोगों के लिए उपलब्ध होना चाहिए ....।

डॉ. आम्बेडकर इन सभी मानदण्डों पर हिन्दु धर्म को उपयुक्त नहीं पाते।

डॉ. आम्बेडकर द्वारा उठाई गई आपत्तियों का निराकरण अनिवार्य है। वैदिक दृष्टि से क्रमानुसार विवेचन प्रस्तुत है।

डॉ. आम्बेडकर द्वारा उठाई गई प्रथम आपत्ति कि शूद्रों को उपनयन का अधिकार नहीं था, उनका एक ही जन्म होता था और पांचवी शंका का बिन्दु तीन कि ज्ञान सब लोगों हेतु उपलब्ध न था इन का कुछ-कुछ समाधान तो स्वयं डॉ. आम्बेडकर अपनी पुस्तक 'शूद्र कौन' में पेज 120 पर इस प्रकार करते हैं- यह सिद्ध किया जा चुका है कि पहले से ही उपनयन का अधिकार न होने की बात तार्किक तथा प्रामाणिकता के आधार पर वेद विधान के प्रतिकूल है, अस्तु अमान्य है।

फिर महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने सत्यार्थ प्रकाश में अलग-अलग समुल्लासों के भिन्न-भिन्न पृष्ठों पर शूद्रों के उपनयन व अध्यनन का समर्थन आर्ष ग्रन्थों के आधार पर करते हैं। यहाँ विचारणीय है कि महर्षि दयानन्द ने वेद तथा उनके अनुकूल होने से अन्य ग्रन्थों को प्रामाणिक मानकर उन्हीं को उद्धृत किया है। अतः यह मान सकते है कि महर्षि का सन्दर्भ जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखते है वह वेदानुकूल तथा आर्ष ग्रन्थों के अनुसार ही है।

महर्षि लिखते हैं- 'द्विज अपने सन्तानों को उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें। और शूद्रादि वर्ण को उपनयन किए बिना विद्याभ्यास के लिए गुरु कुल में भेज दें। (सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास)

प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर पर हो और दूसरा पाठशाला में आचार्यकुल में हो। (सत्यार्थ प्रकाश तीसरा समुल्लास)

इन दोनों पर विचारने पर निम्नालिखित परिणाम प्राप्त होता है।

1. द्विज अर्थात् जो वेदविद्या के ज्ञाता है वे बच्चों का संस्कार घर में ही करके आचार्यकुल में भेज दें।

2. शूद्र अर्थात् अनपढ़ परन्तु ईर्ष्यारहित, सेवाभावी, धार्मिक सेवक अपने बलकों का यज्ञोपवीत संस्कार न करें। ऐसा इस कारण लिखा है कि वे संस्कार कराने की योग्यता ही नहीं रखते और बिना योग्यता अधिकार नहीं मिलता। पुनरपि बच्चा जो अभी योग्यता की कसौटि पर नहीं कसा गया, आचार्य कुल में अवश्य भेजा जा रहा है। अर्थात् उसे भी पढ़ने का अवसर मिलने का पूरा अधिकार है।

3. उपनयन संस्कार स्वगृह के अतिरिक्त आचार्य द्वारा गुरुकुल में भी किया जाता है। तब वहाँ आचार्य सब बालकों की योग्यता देखकर संस्कार करा ही देगा। इस प्रकार शूद्र कुलोत्पन्न परन्तु योग्य बालक का यज्ञोपवीत एक बार अर्थात् आचार्य कुल में ही होगा। वहीं द्विज कुलोत्पन्न किन्तु योग्य बालक का यज्ञोपवीत दो बार (स्वगृह व गुरुकुल में) तथा द्विज कुलोत्पन्न परन्तु अयोग्य एवं शूद्रकुलीता अयोग्य का यज्ञोपवीत क्रमशः एक बार (स्वगृह) एवं एक बार भी नहीं होगा इसी एक अथवा दो बार होने वाले यज्ञोपवीत के कारण बालक का एक अथवा एवं दूसरा जन्म माना जाता है। उपनयन बिना वेदादि पढ़ने का अधिकार नहीं मिलता। यहाँ द्विजों और योग्य शूद्रों का भी गुरुकुल में उपनयन का प्रावधान स्पष्ट होने से उन्हें पढ़ने का अधिकार है, स्वयं स्पष्ट हो जाता है। तृतीय समुल्लास पेज 53 पर 'क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। पुनः पेज 74 पर-

'प्रश्नः- क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़े? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है।

उत्तरः- सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार है और तुम कुंआ में पड़ो .... और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के 26 वें अध्याय में दूसरा मन्त्र है।' इसका अर्थ सत्यार्थ प्रकाश व वेद भाष्य में देख ले। इस मन्त्र पर व्याख्यान करते हुए ऋषि लिखते हैं- परमेश्वर स्वयं कहता है कि हम ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्रियादि और अतिशूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है। ......

क्या परमेश्वर शूद्रों का भला नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करें? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने, सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक और इन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए है वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किए हैं और जहाँ कहीं निषेध किया है। उसका अभिप्राय यह है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे, वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है, उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है। डॉ. आम्बेडकर द्वारा उठाई गई दूसरी आपत्ति शूद्रों के पतन/पराभव हेतु ब्राह्मणों द्वारा उनका उपनयन संस्कार बन्द किया जाने से सम्बधित है। उपनयन से सम्बधित सर्वाधिकार ब्राह्मणों को प्राप्त हुए और उन्होंने इसका निषेध राजनीतिक कारणों से भी करना प्रारम्भ किया। महाभारत पूर्वकाल में उपनयन की व्यवस्था का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। जिसे डॉ. आम्बेडकर ने भी स्वीकारा है। किन्तु उपनयन निषेध सम्बधित प्रस्तुत आपत्ति भी महाभारत काल बाद भारतीय समाज एवं राजनीति का कड़वा यथार्थ रहा है जो 100 फीसदी सत्य है। महर्षि दयानन्द इसका कारण स्पष्ट करते हैं।

सहज सरल सांख्य-५

- आचार्य सतीश, दिल्ली

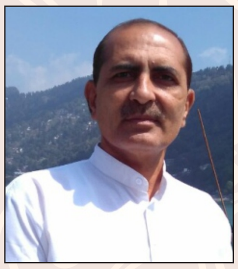

प्रत्यक्षादि प्रमाणों की अनुभूति अचेतन बुद्धि को होती है कि चेतन आत्मा को? यदि बुद्धि को हो तो अचेतन को अनुभूति कैसे और यदि चेतन को हो तो वह परिणामी हो जाएगा।

जड़ जगत् की रचना चेतन आत्माओं के भोग के लिए है। सुख-दु:ख की अनुभूति ही भोग है। आत्मा का अपना शुद्धस्वरूप चेतन है। सुख-दु:ख की अनुभूति से उसमें किसी प्रकार का विकार या परिणाम नहीं अपितु यह तो उसके चेतन होने को ही सिद्ध करता है, अनुभव बिना चेतन के अस्तिव के हो ही नहीं सकता। जैसे दर्पण में किसी वस्तु के प्रतिबिम्ब होने पर दर्पण के वास्तविक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता, ठीक इसी प्रकार बुद्धि के सम्पर्क अथवा सहयोग से सुख-दु:ख आदि का साक्षात् अनुभव करने पर आत्मा अपने शुद्ध चेतनस्वरूप में किसी प्रकार का अन्तर या विकार नहीं आता।

भोक्ता आत्मा है, संसार की रचना उसके भोग के लिए है, लेकिन इसकी रचना तो किसी और ने की है जो समस्त विश्व का अधिष्ठाता है। फिर आत्मा को बिना किए ही फल की प्राप्ति कैसे हो जाती है?

एक तो जैसे इस लोक में देखते हैं कि अन्न को कोई एक उत्पन्न करता है, उसका भोग अनेक करते हैं, ऐसे ही संसार की रचनाओं में जीवात्माओं का हाथ न होने पर भी वे इसके भोगने वाले हो सकते हैं। अर्थात् करने वाला अन्य होने पर भी भोगने वाले उससे अतिरिक्त हो सकते हैं। दूसरा, अविवेक के कारण आत्मा, धर्म, अधर्म आदि स्वकृत कर्मों के अनुसार जन्म-मरण के स्तत्गामी प्रवाह में बह रहा होता है। सामूहिक रूप से जीवात्माओं के ये कर्म, सृष्टि रचना जिसमें उनके भोग के साधन अन्त:करण भी शामिल हैं; में सहायभूत हैं। सृष्टि रचना में अन्य कारणों के साथ जीवात्माओं के अविवेक के कारण किए गए कर्म भी एक कारण हैं। इसलिए जीवात्माओं का फलोपभोग अपने लिए कर्मों का परिणाम होने से कर्ता को ही भोग की प्राप्ति होती है।

आत्मा का अविवेक होने से बन्ध बना रहता है और उससे वह कर्म में लगा रहता है जो जगत् की उत्पत्ति का एक कारण है तो क्या इन दोनों से छुटकारा कभी नहीं होता?

जब किसी आत्मा को स्वरूप का साक्षात्कार अथवा प्रकृति-पुरुष का विवेक ज्ञान हो जाता है तो न अविवेक रहता है और न कृत कर्म अर्थात् विषय जन्म सुख-दु:ख अनुभव। इस स्थिति में आत्मा भोक्तृत्व व कर्तृत्व दोनों छूटकर अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

प्रमाणों का विवेचन कर अनुमान के आधार पर प्रकृति-पुरुष के अस्तित्व को सिद्ध किया गया है। अब शास्त्रकार उसमें अन्य बाधाओं व विशेषताओं पर विचार करता है।

किसी समय इन्द्रियों से गोचर विषय भी दोष उपस्थित होने पर इन्द्रियगोचर नहीं हो पाते, फिर अतिन्द्रिय पदार्थ जैसे प्रकृति आदि का अभाव इस आधार पर स्वीकार्य नहीं हो सकता है कि वह इन्द्रियगोचर तो है नहीं। किसी वस्तु या विषय के अस्तित्व के होते हुए भी कुछ दोष उपस्थित होने पर उसका अभाव प्रतीत हो जाता है, अभाव होता नहीं है।

विषयगत दोष जैसे अतिदूर होने से आकाश में पक्षी उड़ता दिखाई न दे। आंख में अञ्जन अति समीप होने से दिखाई न दे। विषय और इन्द्रिय के बीच कोई उपादान अर्थात् जैसे दूसरे कक्ष में दिखाई न दे दीवार के होने से। इन्द्रियगत दोष जैसे बहरापन या अन्धापन आदि।

लेकिन अतीन्द्रिय प्रकृति तो सौक्ष्म्य के कारण अर्थात् जगत् के मूल कारण सत्व, रजस्, तमस् अतिशय अनुरूप होने के कारण अति सूक्ष्म होते हैं उनका ग्रहण करना इन्द्रियों की शक्ति से परे है। तब इन्द्रियों द्वारा उनकी अनुपलब्धि उनके अभाव का साधक नहीं है।

तो फिर मूल प्रकृति के ज्ञान का उपाय क्या?

सुख, दु:ख, मोहात्मक होने से प्रत्येक वस्तु त्रिगुणात्मक सिद्ध होती है जो कि प्रकृति का कार्य है। हम इसमें लगातार परिणाम भी देखते हैं। परिणामी तत्व का भी मूल उपादान होता है। अत: त्रिगुणात्मक कार्य जगत से उसके मूल उपादान त्रिगुणात्मक प्रकृति का अनुमान हो जाता है।

लेकिन कोई चेतन तत्वों को, कोई स्वाभाव को, कोई सूक्ष्मभूतों को उपादान मानता है। कोई अकारण ही जगत की उत्पत्ति को मानता है, फिर उसका समाधान क्या?

कार्य कारण भाव को तो सभी स्वीकार करते हैं, अत: कार्य को देखकर कारण के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। कार्य में कारण की उपस्थिति भी रहती है। अब चूंकि जगत त्रिगुणात्मक है, अचेतन है, अत: कार्य को देखकर कारण के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। कार्य में कारण की उपस्थिति भी रहती है।

अब चूंकि जगत त्रिगुणात्मक है, अचेतन है, उसका उपादान यदि ईश्वर को माना जाए तो उसे भी ऐसा ही मानना पड़ेगा और यदि ईश्वर को ऐसा माना तो वह प्रकृति का ही दूसरा नाम होगा। अत: त्रिगुणात्मक अचेतन प्रकृति ही मूल उपादान है।

तो क्या कार्य का कारण में अस्तित्व रहता है?

जो वस्तु सर्वथा असत् है व कभी अस्तित्व में नहीं आती हैं, जैसे नरश्रृंग अर्थात् मनुष्य के सींग न कभी थे, न हैं, न आगे होंगे। इसलिए प्रत्येक कार्य अपनी उत्पत्ति से पहले भी कारण रूप में सत् होता है। इसे ही सत्कार्यवाद कहते हैं।

क्रमश ....

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	16 अक्टूबर दिन-शुक्रवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-हस्त
पूर्णिमा	31 अक्टूबर दिन-शनिवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-अश्विनी
अमावस्या	16 अक्टूबर दिन-शुक्रवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-हस्त
पूर्णिमा	31 अक्टूबर दिन-शनिवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-अश्विनी

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-१५

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

गृहस्थ संबन्धों में न्यूनाधिक यदि कुछ हो भी जावे, कुछ कमी रह भी जावे तो उन्हें भरने का एक ऐसा रसायन गृहस्थों के पास रहता है जिससे वे सभी न्यूनताएँ और अधिकताएँ भरी जा सकती हैं और वह रसायन है 'प्रेम' अर्थात् वह स्नेह जिसके कारण से सुन्दर-कुरूप, योग्य- अयोग्य, धनाढ्य-निर्धन, ऊँचा-नीचा या कहिये कौन सा ऐसा अन्तर है जिसे पाटा न जा सके। भले ही इस प्रेम को परिभाषित करना कितना ही कठिन क्यों न रहा हो किन्तु यह है अद्भुत औषधि। जहाँ इसके अन्य प्रभावों ने न जाने कितनी बार समस्याओं को उत्पन्न किया होगा वहीं अनेकों समस्याओं का समाधान भी इसके कारण पल भर में होता रहा है। प्रेम गृहस्थ संबंधों में आत्मा के तुल्य है इसके अभाव में संबंध दिखावा मात्र ही शेष रहते हैं। आधुनिकतावादी विवाह पूर्व प्रेम को उत्तम मानते हैं किन्तु आर्यावर्त्तीय मनीषी परम्परा विवाह के पूर्व बुद्धिपूर्वक निरीक्षण परीक्षण कर वैदिक आचार पूर्वक प्रेम के धीरे-धीरे उपजने को ही सत्य मानती है। इसी प्रेम व इसके प्रभावों के लिए भगवान वेद का आदेश है-

सहृदयं संमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

ऋषि दयानन्द कृत अर्थ- हे गृहस्थों! मैं ईश्वर तुमको जैसी आज्ञा देता हूँ, वैसा ही वर्तमान करो, जिससे तुमको अक्षय सुख हो। अर्थात् तुम जैसे अपने लिए सुख की इच्छा करते और दु:ख नहीं चाहते हो, वैसे माता-पिता सन्तान स्त्री-पुरुष भृत्य मित्र पड़ोसी और अन्य सब से समान हृदय रहो। मन से सम्यक् प्रसन्नता और वैर-विरोधरहित व्यवहार को तुम्हारे लिए स्थिर करता हूँ। तुम हनन न करने योग्य गाय उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्य भाव से जैसे वर्तती है, वैसे एक-दूसरे से प्रेम-पूर्वक कामना से वर्त्ता करो।

यदि हमें अक्षय सुख चाहिए तो उपाय एक ही है, ईश्वराज्ञा पालन और ईश्वर की आज्ञा है कि जैसे अपने लिए सुख की इच्छा करते हो वैसे ही जो आपके निकट हैं, आसपास हैं उनके लिए भी सुख चाहो उन्हें भी सुखी रखो। पहले भी मैं अपको बता चुका हूँ कि सुख से सुख उपजता है और दु:ख से दु:ख अत: यदि आपके आसपास के लोग सुखी हैं तो आप भी सुखी रहोगे और यदि वे दु:ख भोग रहे हैं तो निश्चित ही आपको भी दु:ख भोगना होगा। यह तब संभव है यदि आप सबसे समान हृदय अर्थात् जैसा अपने लिए सुख का विचार रखते हो वैसा ही दूसरों के लिए भी रखो। ऐसा विचार रखना अथवा व्यवहार बनाना भी सरल कार्य नहीं है क्योंकि जिसका जैसा अभ्यास है वह वैसा ही व्यवहार करता है यह अभ्यास ही उसका स्वभाव बन जाता है। किसी नीतिकार ने ठीक ही कहा है 'स्वभावो दुरतिक्रम' अर्थात् जीव स्वभाव का अतिक्रमण कठिनाई से ही कर पाता है। सीमित समयावधि में तो कोई दिखावे के लिए स्वभाव विरूद्ध कार्य कर अपने आप को ढक तो सकता है लेकिन नीतिकार के कहे अनुसार समय आने पर वास्तविकता सामने आ ही जाती है। **काक: कृष्ण: पिक: कृष्ण: को भेद: पिककाकयो:।**
वसन्ते समये प्राप्ते काक: काक: पिक: पिक:॥

अर्थात् कौआ काला होता है, कोयल भी काली होती है सामान्य रूप से इनके अन्तर का पता नहीं चल पाता है लेकिन वसन्त काल के प्राप्त होने पर जब कोयल कूकने लगती है तब यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है। जिसे सुख-चैन से रहने की आदत नहीं है, जो बिना वैर विरोध के रह ही नहीं पाता है वह कुछ समय तक कोयल की भाँति दिख सकता है लेकिन वह रहेगा काक वृत्ति ही। ऐसा काक वृत्ति मनुष्य न तो स्वयं सुखी रहता है और न अपने आसपास के लोगों को सुखी रहने देता है। ईश्वर ने हमारे लिए वैर-विरोध से रहित व्यवहार को निर्धारित किया है अत: हम अपने भीतर प्रेम उपजाएँ, प्रेम पालें वैर-विरोध को अपने भीतर स्थान न दें। वह प्रेम भी कैसा हो वैदिक उदाहरण से समझिये- '**वत्सं जातमिवाघ्न्या**' जैसा प्रेम सद्य जात अर्थात् अभी-अभी उत्पन्न हुए बछड़े के प्रति उसकी माता जो मारने के योग्य नहीं होती उस गाय का प्रेम होता है। यह प्रेम का सर्वाधिक उपयुक्त उदाहरण है। मनुष्य की माता भी अपने बालक से प्रेम करती है परन्तु उसके साथ अपने बालक के द्वारा वृद्धावस्था में सेवा की आशा न्यूनाधिक रूप में रहती ही है किन्तु इस माँ बच्चे के बीच वैसा कोई अनुबन्ध वैसी कोई आशा नहीं जुडी है यह नितान्त निश्छल है यह प्रेम। ईश्वर भी ऐसे ही प्रेम का आदेश देता है, किसी भी प्रकार की सौदेबाजी प्रेम नहीं हो सकती है। सामान्यतया जब हम कहते हैं मुझे इससे क्या मिला तो यह हमारे भीतर छिपि सौदेबाजी ही बाहर आ गई है जिसे हमने किसी प्रकार अभी तक छिपा रखा था। इससे कभी कुछ सुख हो सकता है किन्तु इससे होने वाले इस सुख मे निरन्तरता कभी हो ही नहीं सकती। अत: निश्छल नि:स्वार्थ प्रेम ही व्यवहार के योग्य है। जब इस प्रकार के उत्तम भाव को रखते हुए एक गृहस्थ अपना परिवार बनाता है तब कैसा वह बनता है वेद भगवान के शब्दों में-

अनुव्रत: पितु: पुत्रो मात्रा भवतु संमना:।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान्॥

ऋषि दयानन्द कृत अर्थ- हे गृहस्थों! जैसे तुम्हारा पुत्र माता के साथ प्रीतियुक्त मनवाला, अनुकूल आचरण युक्त और पिता के संबध में भी इसी प्रकार का प्रेमवाला होवे, वैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्त्ता करो। जैसे स्त्री पति की प्रसन्नता के लिए माधुर्य गुणयुक्त वाणी को कहे, वैसे पति भी शान्त होकर अपनी पत्नि से सदा मधुर भाषण किया करे। और भी-

मा भ्राता भ्रातरं द्वक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
समयञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

ऋषि दयानन्द कृत अर्थ- हे गृहस्थों! तुम्हारे में भाई-भाई के साथ द्वेष न करे और बहिन-बहिन से द्वेष कभी न करे। तथा बहिन भाई भी परस्पर द्वेष न करो, सम्यक प्रेमादि गुणों से युक्त समान गुण कर्म स्वभाव वाले होकर मंगलकारक रीति से एक दूसरे के साथ सुखदायक वाणी को बोला करो।

जो परिवार हृदय में प्रेम रखते हुए सुख से रहने का व्यवहार बनाता है उस घर में सन्तान भी माता-पिता का अनुकरण किया करती है। पत्नि और पति दोनो के बीच मधुर वाणी से व्यवहार और मधुर प्रेम युक्त संबंध रहता है आगे की पीढीयाँ भी अनुकरण किया करती हैं तब हर अगली पीढी और भी अधिक स्थिर सुख को प्राप्त करने लगती है। पति घर के तनाव से मुक्त शान्त मन रह बाहर की समस्याओं वा शत्रुओं से निपटने में समर्थ हो जाता है। वहाँ भाई-भाई बहन-बहन, भाई-बहन परस्पर द्वेष से ग्रसित होकर केकडों की भाँति एक-दूसरे की टाँग खिचाई नहीं करते अपितु ईश्वराज्ञा को पालते हुए योग्य को आगे बढा उसी के नेतृत्व में उन्नति को प्राप्त किया करते हैं। उनका भी मधुर वाग्व्यवहार संसार के लिए प्रेरक उदाहरण हुआ करता है। वास्तविकता है द्वेषी परस्पर में कभी सुखी नहीं रहते। इसीलिए-

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथ:।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्य:॥

ऋषि दयानन्द कृत अर्थ-हे गृहस्थों! मैं ईश्वर जिस प्रकार के व्यवहार से विद्वान लोग परस्पर पृथक भाव वाले नहीं होते, और परस्पर में द्वेष कभी नहीं करते, वही कर्म तुम्हारे घर में निश्चित करता हूँ। पुरुषों को अच्छे प्रकार चिताता हूँ कि तुम लोग परस्पर प्रीति से वर्त कर बडे धनैश्वर्य को प्राप्त होओ।

क्रमश ....

गौकरुणानिधिः - गौ आदि पशुओं की रक्षा के लिये ऋषि का संदेश

ऋषि दयानन्द ने वेद के सिद्धान्तों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए अन्य कार्यों के साथ-साथ एक पूर्णकालिक लेखक के रूप में भी अनेकों ग्रन्थों की रचना की है। उन्होंने विशुद्ध व्याकरण के ग्रन्थों से लेकर वेदभाष्य तक व सत्यार्थ प्रकाश जैसे कालजयी ग्रन्थ से लेकर गायादि पशुओं की रक्षा व उपयोगिता के लिए गौकरुणानिधि जैसी सामान्य जन के लिए भी अत्यन्त उपयोगी पुस्तकों की रचना की है। ऋषि ने इस पुस्तक में गायादि पशुओं के पूरे अर्थशास्त्र को, उनकी उपयोगिता को दर्शाया है तथा समीक्षा भाग में मांसाहार व मद्यपान आदि की निस्सारता व हानियों को दर्शाया हैं। वहीं दूसरी ओर नियमादि देकर कृषि तथा पशुओं की उन्नति का मार्ग प्रदर्शित किया है।

यहाँ प्रस्तुत है गौकरुणानिधि पुस्तक, आईये इसका स्वाध्याय करते हैं। ध्यान से पढ़ें तथा विचार करें कि यदि हम ऋषि के बताए अनुसार गायादि पशुओं की रक्षा करते हैं, उनका उपयोग लेते हैं तो न केवल पूरे राष्ट्र को अपितु एक एक व्यक्ति व एक एक परिवार स्मृद्धि को प्राप्त हो सकता है। यही मार्ग हमारी आर्थिक उन्नति का मूल है तथा इसको अपनाकर हम पाप से भी बच सकते हैं।

गतांक से आगे ...

जब मांसाहारी किसी पुष्ट पशु को देखता है, तभी उसको उसकी इच्छा होती है कि इसमें मांस अधिक है, मारकर खाऊँ तो अच्छा हो। और जब मांस को न खानेवाला उसको देखता है तो प्रसन्न होता है कि यह पशु आनन्द में है। जैसे सिंह आदि मांसाहारी किसी का उपकार तो नहीं करते, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए दूसरे प्राणी का प्राण भी ले, मांस खाकर अति प्रसन्न होते हैं, वैसे ही मांसाहारी मनुष्य भी होते हैं। इसलिए मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं।

हिंसक-अच्छा जो यही बात है, तो जब तक पशु काम में आवें, तब तक उनका मांस न खाना चाहिए, जब बूढ़े हो जावें या मर जावें, तब खाने में कुछ दोष नहीं।

रक्षक-जैसे दोष उपकार करनेवाले माता-पिता आदि के वृद्धावस्था में मारने और उनका मांस खाने में है, वैसे उन पशुओं की सेवा न कर मारके मांस खाने में है। और जो मरे पश्चात् उनका मांस खावे, तो उसका स्वभाव मांसाहारी होने से अवश्य हिंसक होके हिंसारूपी पाप से कभी न बच सकेगा, इसलिए किसी अवस्था में मांस न खाना चाहिए।

हिंसक-जिन पशुओं और पक्षियों, अर्थात् जगंल में रहनेवालों, से उपकार किसी का नहीं होता और हानि होती है, उनका मांस खाना चाहिए वा नहीं?

रक्षक-न खाना चाहिए, क्योंकि वे भी उपकार में आ सकते हैं। देखो, १०० (सौ) भङ्गी जितनी शुद्ध करते हैं, उनसे अधिक एक सुअर या मुर्गा अथवा मोर आदि पक्षी सर्प आदि की निवृत्ति करने से पवित्रता और अनेक उपकार करते हैं। और जैसे मनुष्यों का खान-पान दूसरे के खाने-पीने से उनका जितना अनुपकार होता है, वैसे जंगली मांसाहारी का अन्न जंगली पशु और पक्षी हैं। और जो विद्या वा विचार से सिंह आदि वनस्थ पशु और पक्षियों से उपकार लेवें, तो अनेक प्रकार का लाभ उनसे भी हो सकता है। इस कारण मांसाहार का सर्वथा निषेध होना चाहिए।

भला, जिनके दूध आदि खाने-पीने में आते हैं, वे माता-पिता के समान माननीय क्यों न होने चाहिएँ? ईश्वर की सृष्टि से भी विदित होता है कि मनुष्य से पशु और पक्षी आदि अधिक रहने से कल्याण है। क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य के खाने पीने के पदार्थों से भी पशु-पक्षियों के खाने-पीने के पदार्थ घास, वृक्ष, फूल, फलादि अधिक रचें हैं। और वे विना जोते, बोये, सींचे पृथिवी पर स्वयं उत्पन्न होते हैं, और वहां वृष्टि भी करता है। इसलिए समझ लीजिए कि ईश्वर का अभिप्राय उनके मारने में नहीं, किन्तु रक्षा करने ही में है।

हिंसक-जो मनुष्य पशु को मारके मांस खावें, उनको पाप होता है। और जो बिकता मांस मूल्य से ले, वा भैरव, चामुण्डा, दुर्गा, जखैया अथवा वाममार्ग और यज्ञ आदि की रीति से चढ़ा समर्पण कर खावें, तो उनको पाप नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे विधि करके खाते हैं।

रक्षक-जो कोई मांस न खावे, न उपदेश और न अनुमति आदि देवे, तो पशु आदि कभी न मारे जावें। क्योंकि इस व्यवहार में बहकावट लाभ और बिक्री न हो, तो प्राणियों का मारना बन्द ही हो जावे। इसमे प्रमाण भी है।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः॥

-मनु० अ. ५। श्लो० ५१

अर्थ-अनुमति=मारने की आज्ञा देने, मांस के काटने, पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिए लेने और बेचने, मांस के पकाने, परसने और खानेवाले-आठ मनुष्य घातक=हिंसक, अर्थात् ये सब पापकारी हैं।

और भैरव आदि के निमित्त से भी मांस खाना, मारना व मरवाना महापापकर्म है। इसलिए दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि के मारने की विधि नहीं लिखी।

क्रमश ....

संध्या काल

अश्विन-मास, शरद-ऋतु, कलि-5121, वि. 2077 (02 अक्टूबर 2020 से 31 अक्टूबर 2020)	कार्तिक-मास, हेमन्त-ऋतु, कलि-5121, वि. 2077 (01 नवम्बर 2020 से 29 नवम्बर 2020)
प्रातः कालः 5 बजकर 45 मिनट से (5.45 A.M.)	प्रातः कालः 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 P.M.)	सांय कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 P.M.)

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

मैं एक शिक्षित एवं राष्ट्र का सेवक युवक हूँ, इस सत्र में मुझे अपने देश, राष्ट्र और अपनी माता-बहनों की रक्षा की शिक्षा मिलती है। एवं पता चला की प्राचीन काल से हमारे पूर्वज आर्य रहे है। उन्होंने वेदों का ज्ञान प्राप्त किया है और देश की रक्षा की है। हमें अपने दलित वर्गो/एस.सी./एस.टी. वर्गों के सदस्यों से सहजता एवं विनम्रता से बातचीत करनी चाहिए। अगर उसे कोई समस्या हो उसके निवारण के लिए उनकी सहायता करनी चाहिए।

मेरा मत है इस देश में लोगों का आर्य बना एवं उनको सही वेदों का ज्ञान दिलाकर मैं सहयोग करुँगा।

नाम : विजय कुमार, आयु : 21 वर्ष, योग्यता : बी.ए., कार्य : छात्र, पता : मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत।

आर्य समाज के विचारों को वृहत रूप से सुनने-समझने का अवसर मिला। धर्मग्रन्थों व अन्य धर्मग्रन्थ में तुलना करने पर वेदों के अध्ययन हेतु प्रेरणा मिली। सत्यार्थ प्रकाश वेदों की ओर रूचि व जिज्ञासा बढ़ाकर प्रेरित करेगा ऐसा बोध कराया गया। ईश्वर की परखने की कसौटी मिली तथा अन्धविश्वासों व जड़ताओं को विशेषताओं, क्षमताओं व उपलब्धियों का तथा उनका कारण बोध हुआ देश, समाज के प्रति कर्तव्यों का पता चलने पर उपरोक्त को करने के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई। मूर्ति-पूजा अन्य कुरीतियों तथा अंधभक्ति के बचने व छोड़ने की प्रेरणा मिली।

राष्ट्र निर्माण, राष्ट्र रक्षा, राष्ट्र की चिन्ता करने लायक बुद्धि प्राप्त हुई। वेद को मानने समझने से ही उनके सिद्धान्तों पर चला जा सकता है तथा श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि पूर्वज क्यों आज समाज के प्रेरक हैं? कारण वैदिक सिद्धान्तों पर चलना था। परिवार को आर्य बनाने की प्रेरणा के साथ अनुभव व हर्ष रहा।

नाम : नवनीत आर्य, आयु : 45वर्ष, योग्यता : परास्नातक, कार्य : अध्यापक, पता : नजीबाबाद, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत।

इस दो दिन के सत्र में मेरे जितने भी भ्रम थे वो सभी दूर हो गये है- सत्र करने के बाद मुझे ज्ञान हो गया है कि मैं कौन हूँ? और मेरा जन्म किस लिए हुआ है- मैं सत्र करके बहुत खुश हूँ और अपने अन्दर एक नई ऊर्जा को महसूस कर रहा हूँ।

मैं राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा के बैनर तले एक धारावाहिक का निर्माण करना चाहता हूँ जिससे महर्षि दयानन्द के चरित्र और आदर्शो का चित्रण हो जिसको देखकर लोग एकजुट हो और देश का उत्थान करें।

नाम : ईश्वर सिंह, आयु : 26 वर्ष, योग्यता : स्नातक, कार्य : फिल्म डायरेक्टर, पता : नजीबाबाद, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत।

इस सत्र सिद्धान्तों के माध्यम से जो शिक्षा प्राप्त हुई उनसे मन की विभिन्न धर्मों के प्रति या देवी देवताओं के प्रति जो भ्रांति थी उन्हें दूर किया गया। साथ ही जीवन के मूल्य को समझते हुये अपने कर्तव्यों की प्रेरणा प्राप्त कर उसके प्रति दृढ़ सकंल्प भी लिया।

अन्तत: मैं कह सकता हूँ कि इस दो दिवसीय प्रशिक्षण में हमें जो प्राप्त हुआ हमें उसके प्रति आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि हम इस दृढ़ संकल्प में पूर्ण होंगे।

नाम : धर्मपाल सिंह, आयु : 65 वर्ष, योग्यता : बी.टेक, कार्य : अध्यापक, पता : मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत।

सत्र में हमारे स्वार्णिम इतिहास के बारें में विस्तार से ज्ञान मिला। वर्तमान की शोचनीय स्थिति में हमारे क्या कर्तव्य हैं इनका परिज्ञान हुआ तथा कर्तव्यों के निर्वह्न के लिए प्रेरणा मिली। आशा बनी कि अभी भी बहुत कुछ किया जा सकता है।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा के प्रत्येक आह्वान को पूर्ण करने का संकल्प है।

नाम : विजय सिंह, आयु : 26 वर्ष, योग्यता : शास्त्री, कार्य : समाज सेवा, पता : चरखी दादरी, हरियाणा, भारत।

श्रीमान जी में पहले पौराणिक विचार धारा से ओतप्रोत था अब मुझे सत्र के द्वारा जो भी जानकारी प्राप्त हुई उनसे आज मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आजतक का जन्म व्यर्थ गया आज से मुझे लगा मैं अपने लिये और घर समाज के लिये और राष्ट्र के लिये में कुछ कर सकता हूँ और यह कार्य में तन-मन से करूंगा। तन मन से करूगाँ।

नाम : राहुल आर्य, आयु : 31 वर्ष, योग्यता : 12 वीं, कार्य : खेती, पता : मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, भारत।

मेरे जीवन में 12/13 सितम्बर 2020 ये दो दिन बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इससे पहले मेरा जीवन अन्धकारमय था। लेकिन अब मेरे जीवन में उजाला हो चुका है। मैं अपना पूरा जीवन राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा के लिए न्यौछावर कर दूँगा। मुझे यहाँ बहुत अच्छा लगा। अत: मैं रविन्द्र जी का धन्यवाद करता हूँ मुझे यहाँ लाने के लिए।

नाम : टोनी, आयु : 28 वर्ष, योग्यता : एम.ए., कार्य : विद्यार्थी, पता : मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, भारत।

मैं विशाल आर्य अपने वैदिक सनातन धर्म को जानना चाहता था परन्तु बहुत प्रयास करने के उपरान्त भी मुझे कोई सही मार्गदर्शक नहीं मिल सका। जो धर्म को लेकर मेरे मन में अज्ञान था उसको दूर कर सके। सुलेख आर्य जी से सम्पर्क में आने के बाद मुझे वैदिक सनातन धर्म को जानने का व सही-सही पहचानने का अवसर मिला। आर्य सुलेख जी की सूचना पर मुझे गाँव बरगल कुरुक्षेत्र में सत्र लगाने का अवसर मिला। सत्र में आने पर मुझे मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर मिला और मेरा अज्ञान दूर हो गया, जिस कारण मेरे ज्ञान में वृद्धि हुई और अपने धर्म की सही परिभाषा जान सका। मैं प्रण लेता हूँ कि आजीवन अपने वैदिक धर्म का अनुसरण करूगाँ और युवाओं को वैदिक धर्म जानने के लिए प्रेरित करूगाँ।

नाम : विशाल आर्य, आयु : 22 वर्ष, योग्यता : आई.टी.आई., कार्य : विद्यार्थी, पता : यमुनानगर, हरियाणा, भारत।

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमतप्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।